

पत्रकारिता में हिन्दी

डॉ अरुण कुमार

पत्रकारिता में भाषा का जीवन्त रूप मिलता है, बिल्कुल नया, प्रयोगशील और सारकृतिक वैविध्य का समन्वय लिए। किसी भाषा के परिवेश की विविधता साहित्य की इसी विधा से मिलती है। हिन्दी पत्रकारिता के विकास से इसके अन्य रूपों का विकास नुड़ा हुआ है। यह जुड़ाव केवल पत्र में, कहानी, कविता और उपन्यास के छपने के कारण नहीं है। यह शोध का विषय है कि एक समय की पत्रपत्रिकाओं में भाषा का जैसा रूप मेलता है, वह उस की अन्य विधाओं में भी मौजूद है। स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी पत्रकारिता में हिन्दीभाषा का एक ही रूप नहीं मिलता है। पचास के दशक में भाषा में इह आक्रामक तेवर नहीं था, जो साठ के दशक में मिलता है। स्वतंत्र पूर्व के पत्रों में समाचार शीर्षक उतने आकर्षक और धारदार नहीं होते थे, जबकि सत्तर के दशक में इह धारहीनता नहीं।

पत्रकारिता दैनिक जीवन की प्रमुख घटनाओं का संकलन और आकलन है। इसी प्रकार की घटनाएँ पत्रकारिता के विषय नहीं हैं जिन घटनाओं का सामाजिक महत्व होता है, वे ही समाचार पत्रों में जगह पाने की अधिकारी हैं। संपादक का काम घटनाओं का चयन और विश्लेषण करने का है। एक समय में कुछ पत्र कुछेक समाचारों के कारण गहराया हो जाते हैं। हिन्दी के प्रारंभिक पत्रों में व्यापार विषयक समाचारों की प्रमुखता रही है। 'उदंत मार्टण्ड' (1826) और 'बनारस अखबार' (1845) इसी श्रेणी में आते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी, दुर्गा प्रसाद मिश्र आदि के पत्रों (हरिश्चन्द्र नेगजीन, भारतेन्दु और सारसुधा निधि) में सामाजिक और राजनैतिक घटनाओं के समाचार अधिक छपे हैं। संपादकों के बदल जाने से भी पत्रों का स्वरूप बदल जाता है। मासिक गत्रिका 'सरस्वती' (इलाहाबाद, 1898) के पहले संपादक श्याम सुन्दर दास थे। उनके समय के अंकों में साहित्यिक विषयों की प्रधानता रही है। महावीर प्रसाद द्विवेदी 1903 में 'सरस्वती' के संपादक बने। वे 1920 तक रहे। उनके समय के अंकों में साहित्येतर वेषयों की भी प्रधानता रही। विज्ञान के जटिल विषयों पर हिन्दी में अधिकांश लेख 'सरस्वती' में ही छपे हैं। राजनैतिक एवं अर्थशास्त्रीय विषयों को जनसुलभ बनाने का काम भी इसी के मंथ से हुआ है। 'सरस्वती' में केरल के रवि वर्मा से लेकर हिन्दी प्रदेश के चेत्रकारों की रंगीन कलाकृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। लगभग छह पृष्ठों में संकलित

समाचारों में देश-विदेश की घटनाओं का सुन्दर विवरण फोटो सहित प्रकाशित हुआ है। हिन्दी में फोटो पत्रकारिता का विकास इसी पत्रिका से हुआ है। 'विशाल भारत' (मासिक, 1928, कलकत्ता) ने उसकी परंपरा को आगे बढ़ाया। आगे चलकर साप्ताहिक 'दिनमान' (नयी दिल्ली, 1965) ने इस परंपरा को नया रूप दिया।

घटनाओं के चयन और संकलन से पत्रों के रुझान का पता चलता है। कभी-कभी समाचारों की जगह बदल देने से भी उसके रुझान जाहिर होते हैं। 9 अक्टूबर 1990 के समाचारपत्र 'नयी दुनिया' (दैनिक, भोपाल) में आरक्षण के मुद्दे पर राष्ट्रपति की अपील अंतिम पृष्ठ पर जारी हुई है। डॉ रमेश जैन (पत्रकार और पत्रकारिता, जयपुर 1995) के अनुसार 'राष्ट्रपति की अपील जिन परिस्थितियों में जारी हुई थी, उसे देखते हुए इस खबर को अंतिम पेज पर छापने का मतलब इसे दबाना था। जनसत्ता (13 फरवरी 1998) के मुख पृष्ठ की खबर का शीर्षक है, "मतदान से तीन रोज़ पूर्व त्रिपुरा में बीस की हत्या / मारे जाने वालों में सात सुरक्षा जवान।" "तीन रोज़ पूर्व इन तीन शब्दों में सरकार की लुंजपुंज व्यवस्था झलकती है। मात्र शीर्षक समाचार से भी पाठकीय प्रभाव पड़ता है। 27 अक्टूबर 1990 के दैनिक 'आज' (वाराणसी) का शीर्षक समाचार था, मुलायम नाम सत्य है। समाचार का सारांश था कि सरकार ने 'राम' नाम लेने पर प्रतिबंध लगा दिया है। इसलिए अब लोग 'मुलायम नाम सत्य है' कहने के मजबूर हो गए हैं। इसी सिलसिले में प्रेस काउंसिल ने उत्तर भारत के चार हिन्दी दैनिकों की उत्तेजक समाचारों के छापने के लिए भर्त्सना की थी और कौंसिल की उपसमिति के सदस्यों ने उत्तेजक समाचारों की दो सौ पचास कतरने काउंसिल को दी थी (1990)। समाचार का स्वरूप देश और काल के अनुसार तय होता है। विकसित देशों में समाचार का स्वरूप वही नहीं है जो विकासशील और अविकसित देशों में है। ब्रिटेन के समाचारपत्र में रचनात्मक समाचारों की संख्या अधिक होती है और भारत के समाचारपत्रों में नकारात्मक समाचारों की। एक ही देश की भाषाओं के समाचारपत्रों में भी कुछ अंतर है उर्दू के अधिकांश दैनिकों के मुखपृष्ठ का समाचार मुस्लिम देशों से संबंधित होता है तोशनिया हरजेगोविना की बड़ी से बड़ी घटना हिन्दी समाचारों के मुखपृष्ठ का पहल समाचार नहीं होती है, जबकि उर्दू दैनिकों के लिए यह सुबह की पहली खबर होती है इसलिए पत्रकारिता का स्वरूप सनातन और काल-निरपेक्ष नहीं रहा है।

हिन्दी की प्रांगभिक पत्रकारिता से लेकर अब तक सूचना और दृष्टिकोण, दोनों को अलग नहीं माना गया है। पत्रकारिता केवल सूचना देने का काम नहीं करती है। इस कारण वह भाषा गढ़ती भी है और उसका परिष्कार भी करती है। 1830 से 1900 तक हिन्दी भाषा का कोई एक रूप स्थिर नहीं था। क्रियापदों पर अवधी और ब्रजभाषा का प्रभा

शेष था। 'उदंत मार्टण्ड' और 'बनारस अखबार' में 'कीजै' 'लीजै' आदि क्रियापदों की बहुलता थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय (1850-85) तक हिन्दी भाषा का मानक रूप स्थिर नहीं हो सका था। 'हिन्दी प्रदीप' के एक अंक में मदन मोहन शुक्ल (नए दल की नई तान) का लेख छपा है। उसकी भाषा का एक नमूना यों है, 'नाउम्मीदी बुरी बात है सही बिना विवेक और विचार के आशा रखना उससे भी अधिक बुरा है। देश में विरोध और बिगड़ पैदा करना अच्छा नहीं, जल में रहकर मगर से विरोध करना कहाँ की अकिलमन्दी है।' जनवरी 1885 के मासिक 'हिन्दी प्रदीप' (इलाहाबाद) का संपादकीय देखें, 'प्रभुवर लार्ड रिपन का नाम चिर-स्थायी करने को हमारे देशी-बान्धव बहुत कुछ उपाय और प्रयत्न कर रहे हैं।' 'फरवरी 1885 के 'हिन्दी प्रदीप' हिन्दी अब तेरी गति क्या होगी' की प्रारंभिक पंक्तियाँ हैं, "हा! हिन्दी के सच्चे प्रदीप का निर्वाण हो गया वह भाषा जिसकी सब लोग आज दिन हिन्दौ हिन्दी पुकार मचाए हुए हैं।" पाँच-छह वाक्यों के बीच पूर्ण विराम, अर्द्ध विराम इत्यादि कुछ नहीं है। इन उद्धरणों से हिन्दीभाषा की तत्कालीन स्थिति का पता चलता है। पहली बात, वाक्यों का गठन अतिरिक्त शब्दों से बोझिल था। दूसरी बात, शब्दों की वर्तनी का एक रूप नहीं था। तीसरी बात संज्ञा शब्दों का एक सुनिश्चित प्रयोग नहीं था। 'ब' और 'व' अंतर स्पष्ट नहीं था। संयुक्ताक्षर प्रयोग की 'ब' बहुलता थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों में भाषा का ऐसा रूप नहीं आया है जबकि उनके नाटकों में बिहारी, राजस्थानी, पंजाबी, बंगाली, सभी किस्म के पात्रों के भाषिक—नमूने मिलते हैं। हिन्दी के पत्रों में उनके साहित्य की भाषा का तत्काल प्रभाव परिलक्षित नहीं हो सका है। हिन्दी के तत्कालीन पत्रकारों की दृष्टि में पत्रकारिता की भाषा को भाषा के वाचिक रूप के करीब होना चाहिए था। जैसा हम बोलें, पत्र वैसा ही लिखें, इस सोच के कारण भी पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी का मानक रूप तय नहीं हो सका। 'सरस्वती' के प्रारंभिक अंकों में इस विचार की छाप मिलती है मार्च 1905 की 'सरस्वती' में पुस्तक का बहुवचन 'पुस्तकें' और 'पुस्तके' भी छपा है। 'रेफ' का प्रयोग कई जगहों पर हुआ है, दर्बार आदि। बिन्दु, चन्द्र-बिन्दु, फ-फ आदि के प्रयोग में सावधानी बरती गयी है। चौधरी पुरुषोत्तम प्रसाद शार्मा ने 'विविध विषय' स्तंभ के अंतर्गत प्रमुख घटनाओं का संकलन किया है (मार्च 1905) उनके संकलन में 'चाहै' 'पहुँचेगा' 'अफसोस' 'मुजफ्फरपुर' 'जाहिर' 'डेप्युटेशन' जैसे शब्द आए हैं। संस्कृत में 'शर्मा' को 'शार्मा' लिखा जाता है और उर्दू में फे और दुचश्मी 'फु' दोनों प्रलग—अलग हैं। दूसरी भाषाओं के शब्द लेते समय उसके हू-ब-हू उच्चारण को हिन्दी में देने का दृष्टिकोण है यह 'दिनमान' ने भी इस विचार का अनुसरण किया था। परंतु गहरा सद्व्याप्ति सर्वत्र सब जगह लागू नहीं हो सकता है अवधी के क्रियापदों में दो एकार ना प्रचलन है, उसकी तर्ज पर 'चाहै' और 'कीजै' लिखना गलत होगा। क्योंकि f-

प्रदेश की पूर्वी बोलियों के क्रियापदों में ऐसा प्रचलन नहीं है। मैथिली और भोजपुरी वै ऐसा नहीं है। हिन्दी केवल अवधी नहीं है और न मैथिली और भोजपुरी है।

अनुकरण और अनुसरण की कसौटी संप्रेषणीयता है। 'सरस्वती' में ही 1910 के बाद भाषा का सोच वही नहीं रह गया था। व्याकरणिक एकरूपता के साथ भाषा का लचीलापन उस समय की गई पत्रिकाओं में मिलता है। संस्कृत और फारसी को हिन्दी माझ लेने का दुराग्रह ढीला पड़ चुका था। 'सरस्वती' की भाषा बहुत संयत और विन्यशील थी। साप्ताहिक 'मतवाला' (खंडवा) की भाषा थोड़ी आक्रामक थी। 31 मई 1924 के 'मतवाला' के संपादकीय का शीर्षक है, 'हक तो युं है कि हक अदा न हुआ' और 10 दिसंबर 1927 के संपादकीय का शीर्षक है, 'चटाई का लहंगा'। शीर्षक में क्रियापदों का प्रयोग 'मतवाला' की अपनी विशेषता है। बाद में दैनिक 'जनसत्ता' (नवी दिल्ली) ने इसे आगे बढ़ाया है। 'मतवाला' की भाषा बहुत राजनैतिक है और उनमें तत्कालीन के प्रति गहरा रोष प्रकट हुआ है— "चारों ओर से साइमन कमीशन के बहिष्कार की आवाज सुनकर सखी नौकरशाही चौकन्नी हो गई है और रांड बहादुरों तथा दस्तरवान को बलिदौन बहादुरों का बकरा बना कर अपना उल्लू सीधा कराने की फिक्र में दिलोजान से लग गई है" (10 दिसंबर 1927)।

'मतवाला', 'कर्मवीर' मासिक 'चाँद' (लखनऊ) और मासिक 'विशाल भारत' (कलकत्ता) का भाषिक सोच कई तरह के दुराग्रह से मुक्त रहा है। इनमें एक संस्कृत और उर्दू शब्दों से परहेज करने का था, दूसरा भाषा के वास्तविक रूप को हू-ब-हू लिखित रूप देने का था, तीसरा हिन्दी पत्रकारिता की भाषा को सूचनाप्रक बनाने का था। उस समय के पत्रकार तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए हिन्दी भाषा का महत्त्व समझ रहे थे। भाषा अभिव्यक्ति और सोच, दोनों की माध्यम है। एकभाषिक परिवेश का सूक्ष्म अध्ययन उस भाषा की शक्ति और सीमा, दोनों को रेखांकित करता है। निराला की छायावाद परवर्ती कविताओं का आक्रामक तेवर उस समय की पत्रकारिता के भाषिक सोच का ही परिणाम है, 'अबे सुन बे गुलाब' और 'धोबी, चमार, पासी, किसान, खोलेंगे अंधेरे का ताला', यह आक्रामकता छायावाद के दूसरे कवियों में नहीं मिलती है। क्योंकि निराला पत्रकार भी थे। प्रेमचन्द पत्रकार और लेखक थे। ये लोग अपने परिवेश की असलियत के अधिक करीब थे।

इस अवधि की हिन्दी पत्रकारिता ने समाचारों के प्रस्तुतीकरण को नया रूप दिया है। समाचार केवल सूचना का परोसा जाना नहीं है और न वह केवल तात्कालिक महत्त्व का होता है। उन दिनों ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहासकार घटनाओं के संकलन को इतिहास बताते थे। उनका उद्देश्य राष्ट्रीय इतिहास लेखन की परंपरा को चुनौती देना

था। हिन्दी की पत्रिकाओं ने इस रहस्य को बेपर्द किया है। अँग्रेजी समाचारपत्रों में राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं को स्थान नहीं मिलता था। हिन्दी पत्रकारिता के समक्ष एक संकट था, समाचारों के संकलन का। हिन्दी की कोई अपनी समाचार एजेंसी नहीं थी। स्वतंत्रता के दस वर्षों बाद 'समाचार भारती' का गठन हुआ था। 1925 में कांग्रेस के नेताओं के प्रयास से 'फी प्रेस जर्नल' की स्थापना (1925) हुई थी। वहाँ से अँग्रेजी में ही समाचार निर्गत होते थे। उस समय के मासिक और साप्ताहिक पत्रों में समाचारों के लिए एक अलग कॉलम होता था। 1920 में दैनिक 'आज' (वाराणसी) के प्रकाशन के बाद पत्रकारों को हिन्दी में समाचार देने की नियमित आदत समृद्ध हुई। हिन्दी के पत्रों में प्ररतुः हुए समाचारों में सूचना और दृष्टिकोण का अद्भुत संयोग मिलता है। कम से कम शीर्षक समाचारों का चयन तो बिल्कुल अनूठा रहा है। इसके बावजूद हिन्दी पत्रों के समाचारों को कमतरीन कर देखने की सायास आदत बन चुकी थी। दैनिक 'राजस्थान' पत्रिका (1956) के संस्थापक कर्पूरचन्द्र कुलीश के अनुसार उन दिनों अँग्रेजी में छपी खबर ही खबर मानी जाती थी (राष्ट्रीय सहारा, नोएडा, 20 जनवरी 1996)।

हिन्दी के पत्रों ने समाचार को नया तेवर दिया है। साप्ताहिक 'प्रताप' (कानपुर) का हर समाचार सूचना भी है और समाचारपत्र का दृष्टिकोण भी। 1939 के एक अंक का शीर्षक है— "युरोप में महानाश की तैयारियाँ/रूस-जर्मनी में अनाक्रामक संधि/जर्मनी की पूर्वी युरोप में आजादी की माँग/पोलैण्ड की नाजुक हालात/डेंजिंग के नए प्रधान। अब इन शीर्षकों से कोई पाठक 'प्रताप' का दृष्टिकोण जान सकता है। भारत के कई अँग्रेजी पत्रों साप्ताहिक 'पॉयनियर, और 'लीडर' (इलाहाबाद) में भी ऐसे प्रयोग देखे जा सकते हैं। ये पत्र भी राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित थे। दुनिया के दूसरे समाचारपत्रों में समाचार परोसने का उद्देश्य केवल सूचना देना नहीं रहा है लेकिन भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहासकार इतिहास-लेखन के बहाने समाचारों के रखरूप पर भी अपने विचार की चिप्पी लगाते रहे थे। हिन्दी की पत्रिकाओं ने व्याकरणिक मूल्यों को कायम रखा है। आजादी के गूर्व तक चन्द्र बिन्दु और बिन्दु का प्रयोग हुआ है जो आगे चलकर नहीं रह गया था। हाइफन और सेर्मी कालैन का विधिवत प्रयोग हुआ है। उस समय के पत्रों में संयुक्ताक्षर में आधा 'न' के बदले अनुस्वार का प्रयोग नहीं हुआ है। डिस्ट्रिक आधा 'न' का प्रयोग वर्जित नहीं था। अँग्रेजी शब्दों का हिन्दी अनुवाद छपा है। डिस्ट्रिक मैजिस्ट्रेट का संक्षिप्तीकरण डी० एम० है। उस समय के पत्रों में इसके लिए 'जिला०' प्रयुक्त हुआ है। आज के हिन्दी अखबारों में सी० ओ० (सर्किल अफसर) (सुपरइंटेंडेंट ऑफ पुलिस) सहजता से छप रहे हैं। उसके पीछे दृष्टिकोण है। पृष्ठों की पेस्टिंग करते समय सी० ओ० और डी०

हैं। अब 'सीओ' और 'डीएम' लिखा जाता है। मध्यप्रदेश के अखबारों में ऐसे प्रयोग देखने को नहीं मिलते। ऐसे प्रयोग में बिहार के समाचार पत्र आगे हैं।

बीस के दशक में पत्रों में हिन्दी भाषा का एक मानक रूप मिलता है। आजादी के बाद के समाचारपत्रों में यह रूप बरकरार नहीं रहा। नागरी लिपि की वर्तनी सुधार के लिए गठित सभिता (1955) की अनुशंसा के बाद अनुनासिक वर्णों का प्रकार कुछ कम हुआ था। अनुस्वार का प्रयोग बढ़ने लगा। कुछ पत्रों में पूर्णविराम के लिए बिन्दु का प्रयोग बिल्कुल अव्यावहारिक और देवनागरी लिपि की प्रकृति के प्रतिकूल रहा है। मासिक 'सारिका' (बबई), साप्ताहिक 'धर्मयुग' (बबई) और साप्ताहिक 'पराग' (नयी दिल्ली), में ऐसे प्रयोग हुए हैं। देवनागरी लिपि की प्रकृति 'आकार' प्रधान है। इसके हर वर्ण में खड़ी पाई का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में होता है। पूर्णविराम के लिए खड़ी पाई का प्रयोग इसकी प्रकृति के अनुकूल है। बिन्दु देने के बाद शुरू होने वाले वाक्य को आदि-अन्त का प्रत्यक्ष आभास नहीं मिलता है। कम स्पेस वाले पत्रों में यह और भी कठिन है। 1960 के समय की 'सारिका' डबल स्पेस में नहीं निकलती थी। उसके वाक्यों के आदि-अन्त का निर्णय पूर्ण विराम से ही संभव था।

बिहार के कृषि क्षेत्रों से दैनिक और साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन कम हुआ है। यह स्थिति उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश की नहीं रही है। जिन कृषि क्षेत्रों का सीधा संबंध औद्योगिक क्षेत्रों से रहा है, वहाँ से प्रकाशित दैनिकों और साप्ताहिकों की संख्या अधिक रही है, कानपुर, भोपाल, जबलपुर, इलाहाबाद, लखनऊ, आदि ये क्षेत्र पारंपरिक उद्योग और व्यवसाय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहे हैं। इसलिए यहाँ से प्रकाशित दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की संख्या अधिक रही है।

आजादी के प्रारंभिक दशकों में पत्रकार और पत्रकारिता के समक्ष आने वाली कठिनाइयों का बहुत अच्छा विवरण पत्रकार परिषद् के अध्यक्ष यमुना कार्यी के अध्यक्षीय भाषण में आया है। कार्यी साप्ताहिक 'हुँकार' (पटना) के संपादक थे। उनका भाषण पटना से प्रकाशित त्रैमासिक 'साहित्य' (जुलाई 1950) में प्रकाशित हुआ है। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों के सामने बड़ी कठिनाई समाचार भेजने और प्राप्त करने की है। हिन्दू की कोई स्वतंत्र समाचार एजेंसी न होने के कारण हिन्दी समाचारपत्रों में अंग्रेजी समाचार भेजे जाते हैं। हिन्दी के पत्रकारों को दो काम करने पड़ते हैं, एक अनुवाद के और दूसरा समाचार को सजाने का। हिन्दी पत्रों के प्रति सरकार का रुझान भी रचनात्मक नहीं रहा है। हिन्दी पत्रों को सरकारी विज्ञापन कम मिलते रहे हैं। एक ही हाउस निकलने वाले अंग्रेजी और हिन्दी पत्रों के पत्रकारों का वेतनमान अलग-अलग रहा है। अमना जी ने लिखा है कि अन्य सरकारी नौकरियों की तरह पत्रकारिता व्यवसाय के

में घाटे का सौदा है। नौकरी स्थायी नहीं, काम के घंटे का निर्धारण नहीं और वेतन मालिक की मर्जी पर। ये कुछ ऐसे कारण हैं जो हिन्दी पत्रों की भाषा पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष असर डालते हैं। पचास के दशक की हिन्दी पत्रकारिता की भाषा का एक पत्र अनुवाद की भाषा का रहा है। दूसरी ओर साप्ताहिक, मासिक और त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाएँ भी हैं, जिन्होंने भाषा की रचनात्मकता को कायम रखा है। 'कल्पना' (1954 हैदराबाद), ज्ञानोदय (कलकत्ता), माध्यम (इलाहाबाद), प्रतीक (1951 इलाहाबाद), कखग (इलाहाबाद) ये कुछ ऐसे मासिक और त्रैमासिक पत्र हैं जिसकी स्वतंत्र भाषा नीति रही है। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों को रोज दिनचर्या से रूबरू होना पड़ता है। भाषा के परिष्कार का इनका काम मासिक और त्रैमासिक की अपेक्षा कठिन है।

पचास और साठ के दशक में प्रकाशित अधिकांश पत्रिकाओं की भाषा के दो प्रतिरूप दिखते हैं। एक, जिसमें भाषा में अतिरिक्त सजगता और सावधानी है। नयी कविता आन्दोलन से प्रेरित पत्रों (प्रतीक, कल्पना, ज्ञानोदय, माध्यम, कखग आदि) में एक किस्म का बौद्धिक लिबास मिलता है। नयी कविता को कवि बौद्धिक कविता मानते थे। इसलिए उनके पत्रों में बौद्धिक लिफाफा मौजूद है। हर बात को सीधे नहीं कहना चाहेंगे वे, कुछ तोड़कर, कुछ लय बनाकर और कुछ तत्सम शब्दावली की छटा तैयार कर। 'प्रतीक' के एक संपादकीय (नयी दिल्ली, अप्रैल-मई 1951) में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यान 'अज्ञेय' लिखते हैं 'संस्कृति का सामाजिक पक्ष के अतिरिक्त व्यक्ति-पक्ष भी होता है। व्यक्ति-संस्कृति एक मानव की जीवन के प्रति वह भावना है जिससे वह अपने होता है। व्यक्ति-संस्कृति।' अब तक समाजिक संस्कृति सुना था, अब एक नया शब्द ईजाद हुआ व्यक्ति-संस्कृति। 'व्यक्ति-भाषा' प्रयुक्त नहीं हुआ है। क्योंकि हर व्यक्ति की अभिव्यक्ति अपनी होती है, इसलिए उसकी भाषा भी अलग-अलग होगी। हिन्दी के पत्रों में आयी इस प्रवृत्ति का प्रभाव उस समय के कई पत्रों पर पड़ा है।

साठ के कुछ पूर्व समालोचक (मासिक, आगरा, 1958) ने प्रत्यक्ष कहने की शैली अपनाते हुए हिन्दी भाषा को एक आक्रामक तेवर दिया है। इनके पास कहने के लिए बहुत कुछ था। इन्होंने अपने समय के साहित्यिक आन्दोलन को व्यक्ति केन्द्रित बनाया है।

इसलिए इनकी भाषा में पाठकों तक सीधे पहुँचाने का उत्साह है। भाषा का यह असर 'कल्पना' में भी दिखता है। हैदराबाद से प्रकाशित मासिक पत्र 'जन' (1964) की भाषा भी बहुत आक्रामक रही है। यह डॉ राममनोहर लाहिया की संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का पत्र था। डॉ लोहिया ने हिन्दी को 'सरल बनाने की दिशा में कई संशोधन किये थे—पत्र था। डॉ लोहिया ने हिन्दी को सरल बनाने की दिशा में कई संशोधन किये थे—पत्र था। संयुक्ताक्षर पर कम जोर, शब्दों को जाड़ने या अन्य तरीके से नए शब्द बनाने की कारीगरी

(अगुआगिरी, कारखानी इत्यादि), रेफ के प्रयोग को कम करना इत्यादि। डॉ० लोहिया की भाषा में लय है— 'दाम बाँधो, काम दो'। कवि धूमिल की कविताओं पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा है। साहित्यिक पत्रिकाओं में त्रैमासिक पत्र 'आलोचना' के छठे दशक की भाषा में सीधे पाठकों तक पहुँचने का स्वभाव भी आक्रामक शैली का ही असर है।

सातवें दशक की पत्रकारिता में आक्रामक भाषा बड़े घरानों के अखबारों की खास पैंजी बन गयी। दैनिक 'जनसत्ता' से हिन्दी पत्रकारिता की भाषा को नया रूप मिला है। इस समाचारपत्र की शीर्षक पंक्तियों (हेडलाईन्स) में एक चमत्कार पैदा करने की क्षमता रही है। ये समाचार की थीम के तात्कालिक प्रभाव को देखते हुए शीर्षक पंक्ति बना देते हैं। जनसत्ता के पूर्व अँग्रेजी दैनिक 'दी टेलिग्राफ' (कलकत्ता) ने प्रथम पृष्ठ पर फीचर आलेख देने का प्रयोग किया। हिन्दी के समाचारपत्रों ने भी इसका अनुकरण किया है। पहले पृष्ठ पर फीचर देने के कारण उसे अत्यधिक आक्रामक और धारदार होना है। दैनिक समाचारपत्रों के लिए यह एक नया प्रयोग है। इसका अनुकरण अँग्रेजी के दूसरे पुराने समाचारपत्रों ने नहीं किया है। 'दी स्टेट्समेन्ट' में ऐसे प्रयोग कम मिलते हैं।

सत्तर के बाद पत्रकारिता में उर्दू के शब्दों को अपनाने का प्रचलन भी हुआ है। उर्दू के प्रचलित शब्दों को हिन्दी में रखना कई दृष्टियों से अच्छी बात है। प्रेमचन्द्र 'हंस' में भी यह सफल प्रयोग कर चुके हैं। परंतु बिल्कुल असंप्रेष्य शब्दों को खपाने की सायास कोशिश अनुचित है। खमियाजा, लब्बोलुबाव इत्यादि ऐसे ही शब्द हैं। हिन्दी पत्रों ने तत्सम प्रधान शब्दों का भी सुन्दर प्रयोग प्रस्तुत किया है। 'पारदर्शिता' तत्सम शब्द है, जो 'ईमानदारी' का पर्याय है अब किसी राजनेता के लिए 'ईमानदारी' हास्य सूचक शब्द हो गया है। इसके बदले 'पारदर्शिता' का प्रयोग चल पड़ा है। 'दिनमान' (1965 नयी दिल्ली) ने कई नए शब्द चलाए थे 'काबीना' इत्यादि, लेकिन सत्तर के बाद की पत्रकारिता में ये शब्द नहीं खप सके। 'काबीना' के बदले 'मंत्रिमंडल' अब भी मजे में चल रहा है। हिन्दी पत्रकारिता को उर्दू-शब्दों के प्रयोग से परहेज भी नहीं रखना चाहिए। परंतु फारसी के बिल्कुल अप्रचलित शब्दों का प्रचलन उचित नहीं है। उसी प्रकार संस्कृत के विलष्ट शब्दों का प्रचलन भी नहीं होना चाहिए। मध्यप्रदेश के समाचारपत्रों (नयी दुनिया, स्वदेश, अमृत संदेश आदि) ने अँग्रेजी के प्रचलित शब्दों (मशीन, इंजीनियर इत्यादि) का हिन्दी अनुवाद चलाया है।

भाषा का आक्रामक होना बुरा नहीं है बशर्ते कि वह चमत्कृत न करे। एक समय में दैनिक 'आज' (1920) की भाषा आक्रामक नहीं थी लेकिन हिन्दी प्रदेशों में उसकी प्रसार संख्या बहुत अधिक थी। आज की भाषा में व्यक्तिवाद अपने किस्म से हावी हुआ है और इसके लिए भाषा को आक्रामक, धारदार और चमत्कार बनाने

का मतलब दूसरों पर प्रभाव डालने के सिवा और कुछ नहीं है। प्रभाव जोशी मानते हैं (चुनाव चुनौती, सोनी, 14 फरवरी 1998) कि यह व्यक्तिवाद दूरदर्शन के कारण आया है। क्योंकि यह तत्काल शस्त्र है। दूरदर्शन के कारण समाचारपत्रों की पठनीयता प्रभावित हुई है लेकिन वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की धारा को रोकने के बजाए उसके लिए एक ठोस नीति बनाने की आवश्यकता है। ब्रिटेन और अमेरिका में अखबारों की प्रसार संख्या दूरदर्शन के प्रसार से प्रभावित नहीं हुई है। भारत में ही ऐसा क्यों हो रहा है? यहाँ दूरदर्शन और रेडियो से प्रसारित और समाचारपत्रों में प्रकाशित समाचारों की सूचना और बनावट में बहुत ज्यादा अंतर नहीं देखा गया है। यह बात सभी समाचारपत्रों के विषय में लागू नहीं होती है, लेकिन अधिकांश के साथ लागू होती है। दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाली घटना अगले दिन के समाचारपत्रों में हूबहू शब्द में आ जाती हैं। जाहिर है पाठक ऐसे समाचारों को छोड़ देता है। आँखों से देखी जानेवाली घटना को शब्दों में बयान कर देना मात्र पत्रकारिता नहीं है। दूरदर्शन से प्रसारित समाचारों में शब्दों से अधिक खेल, चित्रों का होता है। पत्रों में यह काम शब्दों के माध्यम से होता है। यानि शब्द हमारे मस्तिष्क में जीवंत होते हैं। यह काम ज्यादा कठिन है। इसके लिए जिस भाषा की जरूरत है, उससे दूरदर्शन के समाचार-प्रसारण का काम नहीं होता है। दूरदर्शन के प्रसारण में सूचना के साथ सीधे नजरिए की चिप्पी पैबन्ड हो जाती है—“सदाम हुसैन का तख्त पलट/अमेरिका को होगी खुशी (जी समाचार, 16 फरवरी 1998)” निष्पक्ष समाचारपत्र में इस प्रकार का शीर्षक समाचार देने का अर्थ पाठकों के तबके को अपने अखबार से मरहूम कर देना है।

सूचना माध्यमों में होने वाली भाषिक करवटों से संकेत मिलता है कि हिन्दी की संरचना और क्षमता में लगातार बदलाव आया है। यह बदलाव कहीं हिन्दीभाषी समाज के जागरण का प्रतिफल है, तो कहीं नए संचार माध्यमों की तेज रफ्तार का परिणाम है। आज की हिन्दी पत्रकारिता महज समाचार और विचार बॉटने का उपक्रम नहीं रह गई है। उसमें सोच और व्यवहार को दिशा देने का संकल्प भी है। इसी संकल्प के अनुरूप पत्रकारिता में हिन्दी का बदलता हुआ चेहरा आकर्षित और आश्वस्त करता है। जनरुचि को लक्ष्य कर बनती-सँवरती हिन्दी संचार माध्यमों के प्रतिस्पर्धी संसार में पत्रकारिता को विविधता, व्यावहारिकता, प्रायोजनिकता आदि के नए अनुभव लगातार दे रही है।